International Journal of Science, Strategic Management and Technology
Volume **02** Issue **03** March-**2026** | ISSN: **3108-1762 (Online)** | Impact Factor: 3.8
An International, Peer-Reviewed, Open Access Scholarly Journal Indexed in recognized academic databases

वास्तुशास्त्र का स्वरूप एवं प्राचीन भारतीय ग्राम-योजना: एक अध्ययन

Dipankar Barman

M.A, B.Ed, M.Ed, NET/SET (SANSKRIT). Ph.D Research Scholar, Department of Sanskrit, Sidho-Kanho-Birsha University.

Email- bdipankar939@gmail.com

https://doi.org/10.55041/ijsmt.v2i3.411

Cite this Article: Barman, D. (2026). वास्तुशास्त्र का स्वरूप एवं प्राचीन भारतीय ग्राम-योजना: एक अध्ययन. International Journal of Science, Strategic Management and Technology, *02*(03). https://doi.org/10.55041/ijsmt.v2i3.411

License: This article is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author(s) and source are properly credited.

Abstract

यह शोध-प्रबंध 'वास्तु' शब्द की व्युत्पत्ति, उसके दार्शनिक एवं व्यावहारिक अर्थ तथा प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र में वर्णित ग्राम-योजना के सिद्धांतों का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। संस्कृत धातु '√वस्' से निष्पन्न 'वास्तु' शब्द का मूल अर्थ 'निवास' या 'आवास' है, किन्तु विभिन्न प्राचीन कोशग्रंथों—जैसे *अमरकोश*, *चिन्तामणि*, *शब्दार्थभानु* एवं *शब्दस्तोममहानिधि*—में इसे निवासयोग्य भूमि के रूप में परिभाषित किया गया है। इस शोध में 'Architecture' शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके संभावित संस्कृत स्रोत 'आर्किदक्षतौर्य' के साथ उसके संबंध पर भी विचार किया गया है। प्राचीन ग्रंथों—विशेषतः ऋग्वेद, विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, मानसार, मयमत तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र—के आधार पर 'वास्तु' की व्यापक अवधारणा को स्पष्ट किया गया है, जिसमें केवल भवन ही नहीं, बल्कि उद्यान, सेतु, जलाशय, नगर एवं ग्राम भी सम्मिलित हैं। इस अध्ययन का प्रमुख भाग विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित द्वादश (१२) प्रकार के ग्रामों—जैसे मण्डक, प्रस्तर, बाहुलिक, पराक, चतुर्मुख, पूर्वमुख, मङ्गल, विश्वकर्म, देवराट, विश्वेश, कैलास एवं नित्यमङ्गल—की संरचना, विन्यास एवं सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं का विश्लेषण है। साथ ही, भूमि-चयन, दिशा-निर्धारण तथा पर्यावरण-संतुलन जैसे सिद्धांतों की भी व्याख्या की गई है। अतः यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र केवल निर्माण-कला नहीं, बल्कि एक समन्वित वैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रणाली है, जिसका उद्देश्य मानव जीवन को संतुलित, सुरक्षित एवं समृद्ध बनाना था।

Keywords

वास्तु, वास्तुशास्त्र, ग्राम-योजना, विश्वकर्मा, प्राचीन भारत, वास्तुकला (Architecture), भूमि-चयन, दिशा-निर्धारण, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपरा।

भूमिका-

संस्कृत धातु *√वस्* से *वास्तु* शब्द की उत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है 'बैठना' अथवा 'निवास करना'। "वसन्ति

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

प्राणिनो यत्र" अर्थात जहाँ प्राणी निवास करते हैं, उस स्थान को *वास्तु* कहा जाता है।[1] इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि प्राणी जहाँ भी रहते हैं, वही उनका वास्तु है। जैसे जलचर प्राणियों के लिए जल ही उनका वास्तु है, उसी प्रकार पक्षियों के लिए उनका घोंसला ही वास्तु है। किन्तु *अमरकोश* में 'गृह' के लिए भूमि को ही *वास्तु* कहा गया है।[2] इसके अतिरिक्त *चिन्तामणि*[3], *शब्दार्थभानु* तथा *शब्दस्तोममहानिधि*- आदि प्राचीन कोशग्रंथों में भी निवास योग्य भूमि या गृह-निर्माण के योग्य भूमि को वास्तु के रूप में परिभाषित किया गया है।

अंग्रेज़ी शब्द 'Architecture' वर्तमान में वास्तुविद्या का पारिभाषिक अंग्रेज़ी रूप माना जाता है। 'Architecture' शब्द का उद्भव सोलहवीं शताब्दी में लैटिन शब्द 'Architectura' से हुआ है, जिसे वास्तव में संस्कृत शब्द 'आर्किदक्षतौर्य' का अपभ्रंश माना जाता है।[4] यह शब्द 'आर्कि + दक्ष् + तौर्य' के सम्मिलन से निर्मित है। संस्कृत 'तौर्य' शब्द का अर्थ कला, चातुर्य, विद्या या शिल्पकला से है, जबकि 'दक्ष्' का अर्थ पारंगत या कुशल होता है। 'आर्कि' शब्द से सूर्यपुत्र मनु का बोध होता है। इन सभी शब्दों का प्रयोग देवताओं के शिल्पकला में निपुण 'तष्टा' के संदर्भ में किया गया है। कथा के अनुसार 'तष्टा' ने विशाल सूर्य को काट-छाँटकर उसे सुडौल और नियंत्रित रूप प्रदान किया, जिससे उसकी तीव्र किरणों की उष्णता कम हो गई और पृथ्वी मानव-निवास के योग्य बन सकी। इस प्रकार की विद्या का प्रसार मनु द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी पर किया गया, इसलिए इस विद्या को 'आर्किदक्षतौर्य' कहा गया। इसी शब्द से आगे चलकर लैटिन 'Architectura' तथा अंग्रेज़ी 'Architecture' शब्दों की उत्पत्ति मानी जाती है।

सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में 'वेश्म' शब्द द्वारा 'गृह' का बोध कराया गया है।[5] ऋग्वेद में 'वास्तु' शब्द का प्रयोग भी 'भवन' या 'गृह' के अर्थ में हुआ है।[6] सामान्य दृष्टि से गृह-निर्माण के योग्य भूमि या स्थान को ही 'वास्तु' कहा जाता है, और उसी विषय से संबंधित शास्त्र को 'वास्तुशास्त्र' कहा जाता है।

यद्यपि सामान्य अर्थ में गृह-निर्माण योग्य भूमि को ही 'वास्तु' कहा जाता है, परंतु भारतीय वास्तुशास्त्र में इसका अर्थ अत्यंत व्यापक है। आचार्य विश्वकर्मा के अनुसार देवता, मनुष्य, हाथी, घोड़े तथा गौ आदि के निवास के लिए उपयुक्त भूमि को *वास्तुभूमि* कहा गया है।[7] इसी प्रकार *मानसार*[8], *मयमत*[9] आदि ग्रंथों में भी देवताओं और मनुष्यों के निवास योग्य भूमि को 'वास्तु' कहा गया है। इसके अतिरिक्त, भवन या गृह निर्माण के लिए आवश्यक वे सभी सामग्री, जो सुख और सुविधा प्रदान करने में सक्षम हों, उन्हें भी 'वास्तु' कहा गया है। आचार्य विश्वकर्मा ने 'वास्तु' की परिभाषा को और भी विस्तृत करते हुए कहा है कि भवन निर्माण के लिए उपयुक्त सामग्री—जैसे ईंट, पत्थर, वृक्ष, कील आदि—भी 'वास्तु' के

---

[1] हिन्दी विश्वकोश, खण्ड- २१, पृ-२३६

[2] वेश्मभूर्वास्तुस्त्रियाम्। -अमरकोष, काण्ड- २, पुरवर्ग- १

[3] शव्दार्थ चिन्तामनिकोश, पृ- २९५

[4] विश्वकर्मप्रकाश, महर्षि अभय कात्यायन, उपोद्धात, पृ- ३

[5] भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्।। ऋग्वेद- १०.१०७.१०

[6] ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै.......।।- ऋग्वेद, १.१५४.६

[7] देवतानां नराणाञ्च गजगोवाजिनामपि ......।।– विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्, अध्याय-७.१

[8] तैत (ति) लाश्च नराश्चैव यस्मिन्यस्मिन् परिस्थित (ष्ठि) ताः। तद्वस्तु सु (सू) रिभिः प्रोक्तां (क्तं) तथा वै वक्ष्यतेऽधुना ।।- मानसार, अध्याय- ३.१

[9] अमर्त्याश्चैव मर्त्याश्च यन्त्र-यन्त्र वसन्ति हि। तद् वस्त्विति मतं तज्ज्ञैः.. ......।।- मयमत, अध्याय- २.१

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.
https://ijsmt.org/ , Email: editor@ijsmt.org

अंतर्गत आती हैं।[10] उपर्युक्त सभी ग्रंथों में वास्तु से संबंधित जितने भी विषय वर्णित हैं, उनका मूल आधार 'भूमि' ही है, क्योंकि वास्तु निर्माण से संबंधित सभी कार्य भूमि पर ही संपन्न होते हैं। इन वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी 'वास्तु' शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। कौटिल्य के अनुसार गृह-निर्माण हेतु भूमि, उद्यान, बाँध, सेतु, विभिन्न प्रकार के भवन, जलाशय आदि सभी 'वास्तु' की संज्ञा से अभिहित होते हैं।[11] इस प्रकार विस्तृत अर्थ में केवल मनुष्यों के निवास योग्य गृह ही नहीं, बल्कि राजभवन, प्रासाद, ग्राम, नगर, परिखा, मंदिर, देवालय, मंडप, यज्ञ-वेदी, सभा-गृह तथा कूप आदि—मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक सभी संरचनाएँ 'वास्तु' के अंतर्गत आती हैं।

प्राचीन आचार्यों ने मनुष्य के आवश्यक आवास-निर्माण संबंधी विषय को सरल बनाने के लिए इसे धर्म के साथ जोड़ा। मनुष्य के जीवन में गृह-निर्माण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस बात को ध्यान में रखते हुए ऋषियों ने सुख और समृद्धि की रक्षा हेतु गृह-निर्माण से पूर्व ग्राम-विचार द्वारा उपयुक्त स्थान का चयन, अनुकूल दिशा-निर्धारण तथा शुद्ध भूमि का चयन आदि वास्तुशास्त्रीय नियमों का पालन किया।

"ग्रामादेरनुकूलत्वं दिशो भूतगृहस्य च।
गृहधिष्ण्यादिकं शुद्धं वीक्ष्यायव्ययमंशकान्।।
सुगेहं रचयेद्धीमान् वास्तुशास्त्रानुसारतः।।"[12]

वर्तमान समय में वास्तुशास्त्र की यह उन्नति आकस्मिक नहीं है, बल्कि इसके पीछे प्राचीन ऋषियों[13] का योगदान है, जो वास्तुशास्त्र के ज्ञाता थे। आज की भाँति प्राचीन भारत में भी ग्राम, नगर और महानगर जैसी व्यवस्थाएँ विद्यमान थीं। इसका मूल कारण भौगोलिक स्थिति, जलवायु, नदियाँ और पर्वतीय क्षेत्र थे। प्राकृतिक परिवेश को केंद्र में रखकर ही भवन, मंदिर, मार्ग और ग्रामों का निर्माण किया जाता था। पर्यावरण और वास्तु के समन्वय से, आवश्यकताओं के आधार पर प्राचीन ग्रामों के अनेक प्रकार देखने को मिलते हैं। आचार्य विश्वकर्मा ने वास्तुशास्त्र में ऐसे १२ प्रकार के ग्रामों का उल्लेख किया है।[14] इन ग्रामों का निर्माण अत्यंत सुव्यवस्थित योजना के अंतर्गत किया जाता था। ग्रामों में गृह-निर्माण, मार्ग (वीथी), मंदिर, जलाशय तथा कृषि भूमि आदि का सुविचारित नियोजन किया जाता था। साथ ही, दस्युओं और चोरों से सुरक्षा का भी विशेष ध्यान रखा जाता था। इस प्रकार एक स्वस्थ और सुव्यवस्थित ग्रामीण समाज के निर्माण की पूर्ण योजना बनाई जाती थी।

ग्राम निर्माण पद्धति-

भूमि चयन- गृह-प्रतिष्ठापन करने के पूर्व उपयुक्त समय के चयन के बाद निवास योग्य भूमि का चयन करना कर्तव्य है। उपयुक्त स्थान का चयन यह कार्य वास्तुशास्त्र में पारदर्शी व्यक्ति द्वारा चयनित होता था। इस प्रकार उत्तम, मध्यम एवं अधम— इन तीन प्रकार की भूमि वास्तुशास्त्र में उल्लिखित की गई है।[15] इसके अतिरिक्त वर्ण, गंध, रस के अनुसार

---

[10] इष्टिका च शिला दारुरयः कीलादयोऽप्यमी।

वास्तुकर्मणि चान्यन्त्र वास्तुसंज्ञमुदीरितम्।।- विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, अध्याय- ७.६१

[11] गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबंधस्तटाकमाधारो वा वास्तुः।- अर्थशास्त्र, अधिकरण- ३, अध्याय- ८

[12] वास्तुरत्नाकर- १.११

[13] मत्स्यपुराण, अध्याय- २५२। २-४

[14] विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, अध्याय- ७.६,७,८,९

[15] विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, अध्याय- ५.६

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

ब्राह्मणों के लिए श्वेत-सुगंधि-मधुर, क्षत्रियों के लिए रक्त-रक्तगंधा-कषाय, वैश्य के लिए पीत-मधु-अम्ल, शूद्र के लिए कृष्ण-मद्य-तिक्त मृत्तिका का चयन करना आवश्यक है।[16] भूमि के उत्कृष्ट आकार के आधार पर देवदुर्लभ भूमि का चयन करके निवास स्थान का निर्माण करना अत्यंत उत्तम है।[17] त्रिकोण, पंखा, सर्प, मेंढक, गधा, अजगर— आदि आकृति वाली भूमि सदैव परित्याज्य है।[18]

प्राचीन वास्तुशास्त्र में उल्लिखित १२ प्रकार के ग्राम का विवरण-

१. मण्डक ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित एक विशेष प्रकार की ग्राम योजना है। यह ग्राम सामान्यतः उत्तम एवं समतल वास्तुभूमि पर स्थापित होता है। ग्राम का मुख्य मार्ग पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर विस्तृत होता है और इसके साथ उत्तर, दक्षिण एवं अन्य दिशाओं में अनेक विस्तृत मार्ग जुड़े होते हैं। पश्चिम या वारुणी दिशा में शिव अथवा विष्णु का मंदिर स्थापित किया जाता है और मुख्य मार्ग तथा अन्य मार्ग उस मंदिर को चारों ओर से परिवेष्टित करते हैं। ग्राम योजना में उत्तर दिशा में कुबेर, पूर्व दिशा में इन्द्र तथा दक्षिण दिशा में यम का स्थान निर्धारित होता है। इस प्रकार के ग्राम में सामान्य लोगों की अपेक्षा ब्राह्मण परिवारों की संख्या अधिक देखी जाती है। उपर्युक्त विशेषताओं के समन्वय से जो ग्राम निर्मित होता है, उसे मण्डक ग्राम कहा जाता है।

> ‘‘प्राचीं गता मुख्यवीथी वारुणीं स्पृशते यदि ।
> अन्याभिस्तिसृभिर्युक्ता स्थली स्यान्मुख्यवास्तुषु ॥ 10 ॥
> वारुण्यां देवतागारं विन्यसेच्च क्रमाद्यदि ।
> विप्रैरधिकसङ्ख्याकैर्मण्डकग्राम ईरितः ॥11 ॥’’

२. प्रस्तर ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में ग्राम योजना के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख किया गया है। उनमें से प्रस्तर ग्राम एक महत्वपूर्ण योजना पद्धति है। यह ग्राम सामान्यतः सुव्यवस्थित मार्ग, धार्मिक स्थलों तथा आर्थिक क्रियाकलापों के निश्चित विन्यास पर आधारित होता है। प्रस्तर ग्राम की मुख्य विशेषता इसकी सुव्यवस्थित मार्ग संरचना है। इस ग्राम में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में प्रतोली या प्रवेशद्वार होते हैं। पूर्व से पश्चिम दिशा तक चार मुख्य मार्ग तथा दक्षिण से उत्तर दिशा तक चार मार्ग विस्तृत होते हैं।[19] फलस्वरूप समस्त ग्राम एक प्रकार की जालिकात्मक संरचना में विन्यस्त होता है। इन मार्गों के किनारे निर्मित गृह एक-दूसरे के सम्मुख स्थित होते हैं, जिससे निवास व्यवस्था में संतुलन एवं अनुशासन बना रहता है। इन मार्गों के मध्य यदि तिर्यक या आड़ा कोई छोटा मार्ग हो, तो उसे मध्यवीथी कहा जाता है। ग्राम के मध्यभाग में एक सुंदर आकार का शिवमंदिर निर्मित करना आवश्यक माना गया है[20], जो ग्राम का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र होता है।

प्रस्तर ग्राम के चारों ओर सामान्यतः परिखा अथवा परिखा के समान मार्ग होते हैं, जो ग्राम की सुरक्षा एवं सीमा निर्धारण में सहायक होते हैं। इस ग्राम में मुख्य प्रवेशद्वार पूर्व दिशा में होता है और पश्चिम दिशा में एक जलाशय या सरोवर

[16] विश्वकर्मप्रकाश, अध्याय- १.२४,२५,२६

[17] विश्वकर्मप्रकाश, अध्याय- १.२७-२८

[18] विश्वकर्मप्रकाश, अध्याय- १.२८-३०

[19] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१२

[20] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१३

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

International Journal of Science, Strategic Management and Technology
Volume 02 Issue 03 March-2026 | ISSN: 3108-1762 (Online) | Impact Factor: 3.8
An International, Peer-Reviewed, Open Access Scholarly Journal Indexed in recognized academic databases

निर्मित किया जाता है[21], जिससे जल व्यवस्था सुचारु बनी रहती है। ग्राम के ईशान कोण (उत्तर-पूर्व दिशा) में बाजार या विपणि स्थापित करने का निर्देश दिया गया है। वहाँ विभिन्न वस्तुओं की दुकानें होती हैं और व्यापारिक क्रियाएँ संचालित होती हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्राम में ब्राह्मणों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।[22] इन सभी योजनाओं एवं विशेषताओं के समन्वय से निर्मित ग्राम को प्रस्तर ग्राम कहा जाता है। यह प्राचीन भारतीय स्थापत्य एवं नगर योजना का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जहाँ धर्म, अर्थ एवं सामाजिक जीवन का सुंदर समन्वय देखा जाता है।

३. बाहुलिक ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित ग्राम योजना में बाहुलिक ग्राम एक महत्वपूर्ण योजनाबद्ध ग्राम रूप है। शास्त्र में उल्लिखित विशेषताओं के अनुसार इस ग्राम में मार्ग, निवास, बाजार, मंदिर, जलाशय तथा कृषि भूमि निश्चित नियमों के अनुसार विन्यस्त होते हैं।

प्रथम, बाहुलिक ग्राम में पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर पाँच विस्तृत वीथियाँ या मुख्य मार्ग होते हैं। ये मार्ग या राजपथ ग्रामवासियों के आवागमन एवं संचार के मुख्य साधन होते हैं। इसी प्रकार उत्तर एवं दक्षिण दिशा में भी पूर्वमुखी निवास स्थापित होते हैं। अर्थात् ग्राम के गृहों के द्वार सामान्यतः पूर्व दिशा की ओर होते हैं, जिससे सूर्य का प्रकाश एवं शुद्ध वायु का प्रवेश सुगमता से हो सके।

द्वितीय, इस ग्राम में मुख्य मार्गों के साथ-साथ छोटे-छोटे मार्ग या गलियाँ होती हैं। इन गलियों के किनारे विपणि या दुकानें स्थापित होती हैं[23], जिससे व्यापारिक गतिविधियाँ विकसित होती हैं और ग्रामवासियों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

तृतीय, बाहुलिक ग्राम के मध्यभाग में एक शिवमंदिर स्थापित किया जाता है। यह मंदिर ग्रामवासियों के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का केंद्र होता है। इसके अतिरिक्त ग्राम के दक्षिण भाग में एक जलाशय या सरोवर होता है, जो जल की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

चतुर्थ, इस ग्राम में विभिन्न जाति एवं व्यवसाय के लोग निवास करते हैं। साथ ही ग्रामपाल या ग्रामप्रधान का निवास भी यहाँ होता है[24], जो प्रशासनिक एवं सामाजिक कार्यों का संचालन करता है। अंत में, बाहुलिक ग्राम के चारों ओर कृषि भूमि विस्तृत होती है। इन कृषि भूमियों में खेती के माध्यम से ग्रामवासी अपनी जीविका चलाते हैं और ग्राम आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनता है।

अतः कहा जा सकता है कि पूर्व-पश्चिममुखी पाँच मुख्य मार्ग, पूर्वमुखी निवास, छोटी गलियाँ एवं बाजार व्यवस्था, मध्य में शिवमंदिर, दक्षिण में जलाशय, विभिन्न जातियों का निवास तथा चारों ओर कृषि भूमि—इन सभी विशेषताओं के समन्वय से निर्मित ग्राम को बाहुलिक ग्राम कहा जाता है।

---

[21] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१४

[22] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१५

[23] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१७

[24] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१८

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.
https://ijsmt.org/ , Email: editor@ijsmt.org

४. पराक ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित पराक ग्राम एक विशेष प्रकार की ग्राम योजना है। इस ग्राम में सामान्यतः एक ही मुख्य मार्ग या वीथी होती है। ग्राम के उत्तर भाग में ऐशगृह या शिवालय स्थापित होता है, जो धार्मिक केंद्र होता है। यहाँ लगभग एक हजार लोगों का निवास होता है और ब्राह्मणों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है, जबकि अन्य जातियों की संख्या अधिक होती है, जहाँ लगभग हजार जनसंख्या हो।[25]

ग्राम के दक्षिण भाग में एक जलाशय या सरोवर होता है, जो ग्रामवासियों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस ग्राम के अधिकांश लोग कृषि कार्य में संलग्न होते हैं और उनके गृहों के द्वार सामान्यतः पश्चिममुखी होते हैं। कई बार ग्राम चारों ओर से परिखा या नहर से घिरा होता है, जो सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त ग्राम के दक्षिण भाग में व्यापारियों की दुकानें या बाजार होते हैं। इस क्षेत्र में मुख्यतः धान एवं रसयुक्त गन्ने की खेती की जाती है[26], जो ग्राम की अर्थव्यवस्था का आधार है। उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर निर्मित ग्राम को पराक ग्राम कहा जाता है।

५. चतुर्मुख ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित चतुर्मुख ग्राम एक सुव्यवस्थित ग्राम योजना का उदाहरण है। इस ग्राम के चारों दिशाओं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण—में बड़े प्रवेशद्वार होते हैं, जिससे यह चारों ओर से सुगम होता है। ग्राम के मध्य में एक देवमंदिर या देवालय स्थित होता है, जो धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का केंद्र होता है। इस ग्राम में प्रत्येक दिशा में पाँच अथवा बारह मार्गों की व्यवस्था होती है, जिससे संचार प्रणाली अत्यंत सुव्यवस्थित रहती है।

इस ग्राम में विभिन्न जातियों एवं व्यवसायों के लोग निवास करते हैं। यहाँ कुम्भकार, कुलाल, रजक, आम्बष्ठ आदि कारीगरों के निवास होते हैं[27], जो ग्राम की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यह ग्राम सामान्यतः उपजाऊ भूमि पर स्थित होता है और कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय होता है। ग्राम के पूर्व एवं पश्चिम भाग में कूप, बावड़ी या सरोवर होते हैं, जो जल की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

इसके अतिरिक्त ग्राम के दक्षिण भाग में बाजार या पण्यवीथि होती है, जहाँ व्यापारिक गतिविधियाँ होती हैं। ग्राम की सुरक्षा एवं प्रशासन के लिए ग्रामपाल का कार्यालय भी स्थित होता है। उत्तर दिशा में राजकीय अधिकारियों के कार्यस्थल या प्रशासनिक केंद्र होते हैं। इन सभी विशेषताओं के आधार पर इस ग्राम को चतुर्मुख ग्राम कहा जाता है।

६. पूर्वमुख ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित पूर्वमुख ग्राम एक योजनाबद्ध ग्राम विन्यास का उदाहरण है। इस ग्राम का मुख्य प्रवेशद्वार सामान्यतः पूर्व दिशा की ओर मुख करता है, इसलिए इसे पूर्वमुख ग्राम कहा जाता है। ग्राम चारों ओर से परिखा या नहर से घिरा होता है, जो इसे सुरक्षा प्रदान करता है। यहाँ वैश्य समुदाय के लोगों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होने के

[25] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.१९

[26] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.२१

[27] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.२३

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

कारण व्यापारिक गतिविधियों का विशेष महत्व देखा जाता है[28]। ग्राम के विभिन्न स्थानों पर पण्यवीथि या बाजार विकसित होते हैं, जहाँ व्यापार संचालित होता है।

इस ग्राम में विभिन्न जाति एवं व्यवसाय के लोगों का निवास होता है और उनके लिए पृथक-पृथक आवास की व्यवस्था की जाती है। ग्राम के भीतर राजप्रासाद या नृपालय निर्मित होता है, जो प्रशासनिक केंद्र के रूप में कार्य करता है। ग्राम के उत्तर एवं पश्चिम दिशा में शुभ देवमंदिर स्थापित किए जाते हैं, जो धार्मिक गतिविधियों के मुख्य केंद्र होते हैं। ग्राम के विभिन्न स्थानों पर जलाशय, कूप या सरोवर की व्यवस्था होती है, जो ग्रामवासियों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस ग्राम में लगभग तीस वीथियाँ या मार्ग होते हैं और मुख्य मार्गों के साथ छोटे-छोटे उपमार्ग भी जुड़े होते हैं, जिससे संचार व्यवस्था सुव्यवस्थित होती है। ग्राम के बाहर प्रवेश हेतु नगरद्वार भी निर्मित किए जाते हैं। ग्राम के चारों ओर विभिन्न कारीगरों एवं शिल्पियों के निवास होते हैं, जो ग्राम के विविध कार्यों को संपन्न करते हैं। इन सभी विशेषताओं के आधार पर निर्मित ग्राम को महर्षियों ने पूर्वमुख ग्राम कहा है।

७. मङ्गल ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित मङ्गल ग्राम एक सुव्यवस्थित एवं योजनाबद्ध ग्राम विन्यास का उदाहरण है। इस ग्राम का मुख्य प्रवेशद्वार सामान्यतः पूर्व या पश्चिम दिशा की ओर होता है। ग्राम के भीतर पूर्व से पश्चिम दिशा में चार मुख्य मार्ग विस्तृत होते हैं तथा उत्तर एवं दक्षिण दिशा में छह भागों में विभाजित मार्ग ग्राम को विभिन्न खंडों में विभक्त करते हैं। इन मार्गों के संगम पर अनेक चौराहे या प्रतोली निर्मित होते हैं, जिससे ग्राम की संचार व्यवस्था सरल एवं संगठित होती है। ग्राम चारों ओर से परिखा या गहरी लहर से घिरा होता है, जो सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इस ग्राम के पश्चिम भाग या मध्य में देवमंदिर स्थापित किया जाता है, जो धार्मिक जीवन का केंद्र होता है। ग्राम के भीतर गलियों एवं मार्गों में प्रवेश के लिए गोपुर या तोरण निर्मित होते हैं। यहाँ विभिन्न जाति एवं व्यवसाय के लोग निवास करते हैं और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बाजार या पण्यवीथि की व्यवस्था होती है। साथ ही साधु एवं ब्रह्मचारियों के लिए मठ या आश्रम तथा सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों के लिए मण्डप भी निर्मित होते हैं।[29]

ग्राम के विभिन्न स्थानों पर कूप, सरोवर, बावड़ी आदि जलाशयों की व्यवस्था होती है, जो जल की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इन सभी विशेषताओं के आधार पर इस ग्राम को मङ्गल ग्राम कहा जाता है।

८. विश्वकर्म ग्राम-

विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित विश्वकर्म ग्राम एक विशाल एवं सुव्यवस्थित ग्राम विन्यास का उदाहरण है। यह ग्राम सामान्यतः नदी के तट पर स्थित होता है और इसकी वास्तुभूमि अत्यंत उत्तम मानी जाती है। ग्राम के गृहों के मुख्य द्वार पूर्व-पश्चिम अथवा उत्तर-दक्षिण दिशा की ओर होते हैं। समस्त ग्राम चार मुख्य द्वारों से युक्त होता है तथा चारों ओर प्राकार या परिखा से सुरक्षित रहता है। ग्राम की भूमि सामान्यतः चतुर्भुज या आयताकार होती है और पूर्व से पश्चिम दिशा में समानांतर मुख्य मार्ग होते हैं।

ग्राम में दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर बत्तीस मुख्य वीथियाँ तथा पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर छह वीथियाँ होती हैं। आवश्यकता अनुसार छोटी-छोटी उपवीथियाँ भी निर्मित होती हैं, जिससे संचार व्यवस्था सुदृढ़ होती है। ग्राम के पश्चिम

---

[28] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.२५

[29] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.२९-३१

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

भाग में विशाल शिवालय या ईशगृह निर्मित होता है और कई स्थानों पर पूर्व दिशा में काली मंदिर भी स्थापित होते हैं। ग्राम में कूप, सरोवर एवं बावड़ी जैसे जलाशयों के साथ उद्यानों की भी व्यवस्था होती है।[30]

इस ग्राम में धार्मिक एवं शैक्षिक गतिविधियों हेतु *मठ* एवं *मण्डप* होते हैं, जहाँ साधु एवं ब्रह्मचारी निवास करते हैं। यहाँ विद्यालय एवं औषधालय भी होते हैं, जो ग्रामवासियों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। मार्गों के दोनों ओर गृह निर्मित होते हैं और ग्राम की जनसंख्या लगभग छह हजार होती है। ग्राम में राजप्रासाद, न्यायालय तथा सभा के लिए सभागृह भी होते हैं। साथ ही कारीगरों, शिल्पियों एवं व्यापारियों का निवास तथा बाजार की व्यवस्था भी होती है। इन सभी विशेषताओं के आधार पर इस ग्राम को विश्वकर्म ग्राम कहा जाता है।

९. देवराट ग्राम

प्राचीन शास्त्रों के अनुसार देवराट ग्राम एक आदर्श ग्राम है, जहाँ देवी अम्बिका-कालिका, भगवान विष्णु, भगवान शिव तथा दिक्पालों के देवालय सुसज्जित होते हैं। इस ग्राम का मुख्य द्वार पूर्व या पश्चिम दिशा की ओर होता है, जो पवित्रता एवं समृद्धि का प्रतीक है।

ग्राम की भूमि जलस्रोतों से समृद्ध होती है, जैसे नदी, सरोवर या कूप। प्रत्येक मार्ग के दोनों ओर गृहों की पंक्तियाँ होती हैं और कुल तीस वीथियों का विन्यास होता है, जिससे ग्राम सुव्यवस्थित एवं गतिशील बनता है।

प्रत्येक वीथी के एक ओर दो छोटी गलियाँ या उपवीथियाँ होती हैं, जिससे आवागमन सुगम होता है। यहाँ विभिन्न जाति एवं वर्ग के लोग निवास करते हैं तथा उत्सवों के लिए मण्डप एवं उद्यान भी होते हैं।

इस ग्राम में व्यापारी वर्ग का निवास होता है, जो क्रय-विक्रय के माध्यम से जीवनयापन करते हैं। कारीगर अपनी कला से ग्राम को सुशोभित करते हैं। धनी व्यक्तियों के साथ-साथ पशुधन की भी प्रचुरता होती है। इस प्रकार के ग्राम को देवराट ग्राम कहा जाता है।[31]

१०. विश्वेश ग्राम

प्राचीन वास्तु शास्त्र में वर्णित विश्वेश ग्राम में दक्षिण-उत्तरमुखी पाँच विस्तृत वीथियाँ तथा पूर्व-पश्चिममुखी पाँच वीथियाँ (कोनों में छोटी वीथियों सहित) निर्मित होती हैं। ये मार्ग पर्याप्त चौड़े होते हैं, जिससे ग्राम की सुव्यवस्थित संचार व्यवस्था सुनिश्चित होती है। ग्राम के चारों ओर प्राकार या परकोटा निर्मित होता है और मध्यभाग में ईशगृह अथवा भगवान शिव का मंदिर स्थापित होता है।[32] व्यापारियों की अधिकता होती है तथा बाहरी प्राकार के समानांतर परिखा या नहर का निर्माण किया जाता है, जो सुरक्षा एवं पवित्रता प्रदान करता है। ग्राम में साधु-संतों एवं ब्रह्मचारियों के लिए मठ, उत्सव हेतु मण्डप तथा कूटशिखर सहित शिल्पशालाएँ विद्यमान होती हैं। यहाँ की जनसंख्या लगभग दो हजार होती है, जिसे वास्तु परंपरा में 'विश्वेश्वर ग्राम' कहा जाता है। विद्वान इस ग्राम को आध्यात्मिकता एवं समृद्धि का केंद्र मानते हैं।

११. कैलास ग्राम

प्राचीन वास्तु शास्त्र में वर्णित कैलास ग्राम समुद्र तटवर्ती या पर्वत की उपत्यका से संलग्न भूमि पर स्थित होता है, जो वृत्ताकार या चतुर्भुजाकार आकार का होता है। यह स्थिति ग्राम को प्राकृतिक समृद्धि एवं स्थिरता प्रदान करती है।

---

[30] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.३५

[31] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.४४

[32] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.४६

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

उत्तम भूमि एवं मुख्य मार्ग विन्यास

उत्तम भूमि पर शुभ भवनों का निर्माण किया जाता है, जहाँ मुख्य मार्ग विस्तृत होते हैं। पूर्व भाग में परिखा एवं प्राकार निर्मित होते हैं, जो सुरक्षा एवं पवित्रता सुनिश्चित करते हैं।[33]

केंद्रीय देवालय एवं पश्चिम के जलस्रोत

ग्राम के मध्य भाग में देवायतन या मंदिर गोपुर सहित स्थापित होते हैं। पश्चिम दिशा में बापी (पुष्करिणी), कूप, तड़ाग आदि जलाशयों का सुन्दर विन्यास किया जाता है।

समाज एवं व्यापार की समृद्धि

व्यापारियों एवं श्रेष्ठियों (धनी व्यवसायियों) का अधिक निवास होता है, साथ ही विभिन्न प्रकार के दुकान, हाट-बाजार भी होते हैं। ब्राह्मणों के समान अन्य जाति-समुदायों का भी पर्याप्त निवास इस ग्राम को विविधतापूर्ण बनाता है।

वीथी एवं उपवीथियाँ

दक्षिण-उत्तर दिशा में विस्तृत मार्गों पर बड़े चौराहे निर्मित होते हैं। स्थानानुसार चारों ओर उपमार्ग या छोटी गलियाँ विस्तृत होती हैं।

पूर्व-पश्चिम मार्ग एवं नामकरण

पूर्व-पश्चिम दिशा के मार्ग विद्वानों की इच्छा के अनुसार नियोजित होते हैं। इस प्रकार के ग्राम को विद्वान 'कैलास ग्राम' के नाम से अभिहित करते हैं।[34]

१२. नित्यमङ्गल ग्राम के लक्षण एवं योजना

नित्यमङ्गल ग्राम चारों ओर चतुर्द्वार सहित महागोपुरयुक्त होता है, जो राजमार्ग से जुड़ा होता है तथा चारों ओर परिखा से घिरा रहता है।[35] ये विशाल द्वार ग्राम की महत्ता एवं सुरक्षा के प्रतीक हैं।

वीथी एवं मार्ग का विन्यास

ग्राम में अष्टक वीथियाँ (८ मुख्य मार्ग) निर्मित होती हैं तथा समस्त ग्राम क्षेत्र को चार भागों में विभाजित किया जाता है—प्रत्येक भाग में ८ के अनुसार कुल ३२ विशाल मार्ग होते हैं। सभी भाग समान माप के होते हैं और कोई उपमार्ग या छोटी गलियाँ नहीं होतीं।[36]

देवताओं के मंदिर-

चौराहों पर इन्द्र, मित्र, वरुण, कुबेर आदि अधिदेवताओं के मंदिर स्थापित होते हैं। प्रत्येक भाग में विष्णु, शिव, देवी (कालिका-दुर्गा) तथा सूर्यदेव के मंदिर गोपुर सहित सुंदर रूप से निर्मित होते हैं।[37] मंदिरों में सभागृह एवं उत्सव मण्डप भी होते हैं।

जलाशय एवं केंद्रीय भवन-

ग्राम के मध्य भाग में तड़ाग, बापी आदि जलाशय होते हैं। कुल जनसंख्या ६,००० से अधिक होती है, जो चारों ओर फैली रहती है।

---

[33] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.५०

[34] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.५४

[35] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.५५

[36] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.५६

[37] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.५७

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

व्यापार एवं समाज-

व्यापारी, तन्तुवाय (जुलाहा-बुनकर) तथा रेशम व्यवसायियों की अधिकता होती है।[38] ग्राम के कारीगरों के कारण यह एक समृद्ध एवं आत्मनिर्भर बस्ती बनती है। यहाँ राजकीय अधिकारियों के कार्यालय तथा न्यायालय के सभागृह भी होते हैं। इस प्रकार के निर्मित ग्राम को वास्तुशास्त्र में 'नित्यमङ्गल ग्राम' कहा गया है—जो समृद्धि एवं मंगल का चिरस्थायी आधार है।

निष्कर्ष (Conclusion)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि 'वास्तु' शब्द केवल भवन-निर्माण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक अवधारणा है, जो मानव जीवन, प्रकृति और समाज के समन्वय का प्रतीक है। संस्कृत धातु '√वस्' से उत्पन्न 'वास्तु' का मूल अर्थ 'निवास' होने पर भी प्राचीन ग्रंथों में इसे निवासयोग्य भूमि, निर्माण सामग्री तथा समग्र जीवन-व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

ऋग्वेद से लेकर विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, मानसार, मयमत तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक 'वास्तु' की परिभाषा क्रमशः अधिक व्यापक और व्यावहारिक रूप में विकसित होती गई है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने वास्तु को केवल शिल्पकला नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक अनुशासन के रूप में स्थापित किया। विशेषतः विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र में वर्णित द्वादश प्रकार के ग्रामों की योजना यह दर्शाती है कि प्राचीन भारत में ग्राम-निर्माण अत्यंत सुव्यवस्थित, योजनाबद्ध एवं पर्यावरण के अनुकूल था। भूमि-चयन, दिशा-निर्धारण, जल-संसाधन, सुरक्षा व्यवस्था तथा सामाजिक संरचना—इन सभी तत्वों का समन्वय करके एक आदर्श एवं आत्मनिर्भर ग्राम की परिकल्पना की गई थी।

अतः यह कहा जा सकता है कि वास्तुशास्त्र केवल अतीत की परंपरा नहीं, बल्कि एक ऐसा समग्र ज्ञान-विज्ञान है, जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। आधुनिक वास्तुकला एवं नगर-योजना में यदि इन प्राचीन सिद्धांतों का समुचित समावेश किया जाए, तो एक संतुलित, पर्यावरण-सम्मत एवं सतत् विकासशील समाज की स्थापना संभव है।

REFERENCE'S

BOOKS:

Bhardwaj, Anand. *'Vrihad Vastushastra-Ek Mahagrantha.'* Notion Press, p. 330.

Dvivedī, Bhojarāja. '***Sampuran Vaastushastra* (सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र)*'*.** Diamond Pocket Books (P) Ltd., 2022, p. 200.

Katayayan, Maharishi Abhay, editor. **'*Viśvakarmaprakāśaḥ Vāstuśāstram*.'** Caukhambā Surabhāratī Prakāśana, p. 2024.

Sukhdev, Chaturvedi. **'*Bhartya Vaastu Shastra*.'** 2004.

Vidyādhara. '***Bhāratīya Vāstuśāstra Kā Itihāsa*.'** Istạrna Buka Liṅkarsa, 2010, p. 290.

Viśvakarmā. **'*Viśvakarmā's Viśvakarma-Vāstu-Śāstram*.'** Edited by Shrikrishna Jugnu, Parimala Pablikeśansa, 2022, p. 504.

ONLINE BOOKS:

Hotwani, Mehul, and Priyanka Rastogi. ***"Vastu Shastra: A Vedic Approach To Architecture."*** *Zenodo*, IJERT.ORG, 24 Feb. 2022, https://doi.org/10.5281/zenodo.18479400.

"***विश्वकर्मावास्तुशास्त्र Visvakarma Vastusastram***: Visvakarma: Free Download, Borrow, and Streaming: Internet

[38] विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम्- ७.५९

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.

Archive." *Internet Archive*, https://archive.org/details/visvakarma-vastusastram.

"***विश्वकर्म प्रकाश Vishwakarma Prakash***: Abhay Katyayana: Free Download, Borrow, and Streaming: Internet Archive." *Internet Archive*, https://archive.org/details/vishwakarma-prakash.

"***Vastuvidhyayam:*** Viswakarma: Free Download, Borrow, and Streaming: Internet Archive." *Internet Archive*, Śrī Baḷavantarāya Prabhāśaṅkara Somapurā, Ahmedabad, https://archive.org/details/dli.ministry.27418.

"***Viswakarma Vastusastram (1958)***: Sastri Sri K. Vasudeva: Free Download, Borrow, and Streaming: Internet Archive." *Internet Archive*, T. M. S. S. M. Library., 1958, https://archive.org/details/dli.ernet.536734.

JOURNAL:

Kumar, Paridhii G. ***"Importance of Vastu in Modern World."*** *International Journal of Jyotish Research*, no. 2, AkiNik Publications, Jan. 2025, pp. 77–83. *Crossref*, doi: 10.22271/24564427.2025.v10.i2b.273.

© Author(s). This work is peer-reviewed, openly published, and permanently archived
This article is openly accessible and reusable with proper attribution.